रजिस्ट्री सं. डी. एल.-33004/98

REGD. NO. D. L.-33004/98

भारत का राजपत्र
The Gazette of India

असाधारण
EXTRAORDINARY

भाग III—खण्ड 4
PART III—Section 4

प्राधिकार से प्रकाशित
PUBLISHED BY AUTHORITY

सं॰ 34] नई दिल्ली, बुधवार, जुलाई 1, 1998/आषाढ़ 10, 1920
No. 34] NEW DELHI, WEDNESDAY, JULY 1, 1998/ASADHA 10, 1920

महापत्तन प्रशुल्क प्राधिकरण

अधिसूचना

नई दिल्ली, 1 जुलाई, 1998

सं. TAMP/1/97-JNPT.—महापत्तन न्यास अधिनियम, 1963 (1963 का 38) की धारा 49 और 50 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए महापत्तन प्रशुल्क प्राधिकरण बम्बई कस्टम हाउस एजेन्ट्स एसोसिएशन द्वारा जवाहर लाल नेहरू पत्तन न्यास में एक नए बर्थ यार्ड के प्रचालन के बारे में किए गए अभ्यावेदन से संबंधित मामले में जवाहर लाल नेहरू पत्तन न्यास द्वारा उठाई गई प्रारम्भिक आपत्तियों के संबंध में एतद्द्वारा एक आदेश जारी करता है।

एस. सत्यम, अध्यक्ष

[ए डी वी टी III/IV/143/98 एक्सटी]

महापत्तन प्रशुल्क प्राधिकरण

मामला सं. TAMP/1/97-JNPT

द बम्बई कस्टम हाउस एजेन्ट्स एसोसिएशन.....आवेदक

बनाम

जवाहर लाल नेहरू पत्तन न्यास.....गैर-आवेदक

आदेश

(18 जून, 1998 को पारित)

यह मामला बम्बई कस्टम हाउस एजेन्ट्स एसोसिएशन से प्राप्त एक अभ्यावेदन से संबंधित है जिसमें आरोप लगाया गया है। कि जवाहर लाल नेहरू पत्तन न्यास ने एक आदेश पारित किया जिसमें एक नया बर्थ यार्ड शुरू किया गया और प्राधिकरण के अनुमोदन अथवा परामर्श के बिना नए प्रशुल्क लगाए गए।

2. इस विषय पर दीर्घकालिक पत्राचार के पश्चात् जवाहर लाल नेहरू पत्तन न्यास ने दरमान और बर्थर चार्ज के प्रचालन की नियामक शर्तों का विवरण तैयार करने के लिए अन्ततः 7 मार्च, 98 को एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया। इस मामले की 8 मई, 98 को दिल्ली में सुनवाई की गई।

3.1 सुनवाई के दौरान मामले के गुणदोषों की जांच करने से पूर्व ज. ने. प. न्या. ने इस मामले की जांच करने की प्राधिकरण की अधिकारिता और मामले पर कार्यवाही करने के तरीके के बारे में कुछ प्रारम्भिक आपत्तियां उठाई। सुनवाई के दौरान मौखिक प्रस्तुतीकरण में उठाई गई मुख्य प्रारम्भिक आपत्तियां निम्न प्रकार थी :—

(i) महापत्तन प्रशुल्क प्राधिकरण अर्ध न्यायिक प्राधिकरण नहीं है।

(ii) इसलिए यह याचिकाओं के संबंध में निर्णय नहीं दे सकता।

(iii) महापत्तन प्रशुल्क प्राधिकरण सुनवाई करने के लिए प्राधिकृत नहीं है।

यह साक्षियों को नहीं बुला सकता। यह साक्ष्य को रिकार्ड नहीं कर सकता है।

3.2 ज. ने. प. न्या. के लिए उपस्थित वरिष्ठ काउंसल श्री राजीव कुमार ने इस मामले में लिखित प्रस्तुतीकरण करने के लिए ज. ने. प. न्या. को कुछ समय देने का अनुरोध किया। बम्बई कस्टम हाउस एजेन्ट्स एसोसिएशन (BCHAA) भी ऐसा समय दिए जाने के पक्ष में था ताकि वह ज. ने. प. न्या. के लिखित प्रस्तुतीकरण का उचित रूप से उत्तर दे सके।

3.3 तदनुसार ज. ने. प. न्या. को लिखित प्रस्तुतीकरण के लिए 25 मई, 98 तक का समय दिया गया और BCHAA के लिए अगली सुनवाई से पहले लिखित प्रस्तुतीकरण का उत्तर देना अपेक्षित था।

3.4 इस मामले में ज. ने. प. न्या. से कोई लिखित प्रस्तुतीकरण प्राप्त नहीं हुआ। ऐसा होने पर BCHAA से उत्तर प्राप्त होने का प्रश्न नहीं उठता।

4. इन परिस्थितियों में हम तीन प्रारम्भिक आपत्तियां जो क्रमशः निम्न प्रकार हैं, पर कार्यवाही करते हैं :-

(i) <u>महापत्तन प्रशुल्क प्राधिकरण अर्ध न्यायिक प्राधिकरण नहीं है।</u>

यह कानून की सही स्थिति नहीं है।

इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि प्राधिकरण का गठन संविधि के अन्तर्गत किया गया है, अतः यह एक सांविधिक प्राधिकरण है। इसके मुख्य कार्य दर, शुल्क, पत्तन देयताओं के मान और पत्तन न्यास की सम्पत्तियों की दरें भी नियत करना है। प्रशुल्क प्रस्तावों से संबंधित मामलों में निरपवाद रूप से दो पक्षकार हैं, एक न्यासी बोर्ड और दूसरा प्रयोक्ता अथवा प्रयोक्ता निकाय।

पहले न्यासी बोर्ड को उनके द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाओं के लिए दर, शुल्क, और पत्तन देयता मान नियत करने की शक्ति प्राप्त थी। दूसरे शब्दों में वे सेवा प्रदान किया करते थे और स्वयं शुल्क दरें और देयताएं निर्धारित करते थे महापत्तन न्यास अधिनियम, का संशोधन होने के पश्चात् सेवाएँ न्यासी बोर्ड द्वारा प्रदान की जाती हैं परन्तु दर, शुल्क, पत्तन देयता आदि के मान संविधि के तहत गठित एक स्वतंत्र निकाय द्वारा निर्धारित किए जाने हैं।

कानून की तयशुदा स्थिति यह है कि यदि किसी संविधि द्वारा किसी प्राधिकरण को जो सामान्य अर्थ में कोई न्यायालय नहीं है, संविधि के अधीन किसी एक पक्षकार द्वारा किए गए दावे से उत्पन्न विवाद जिनका किसी दूसरे पक्षकार द्वारा विरोध किया जाता है, का निर्णय करने और परस्पर विरोधी वादकारी पक्षकारों के संबंधित अधिकारों का निर्धारण करने की शक्ति प्राप्त होती है, प्रथम दृष्टया वाद है और संविधि में किसी प्रतिकूल बात के न होने पर प्राधिकरण को न्यायिक कार्यवाही करने का कर्त्तव्य है और प्राधिकरण का निर्णय अर्ध न्यायिक कार्य है।

इसी प्रकार यदि किसी सांविधिक प्राधिकरण को कोई ऐसा कार्य करने की शक्ति प्राप्त है जिससे विषय पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा, तब, यद्यपि प्राधिकरण के अतिरिक्त दो पक्षकार नहीं हैं और विवाद, कार्यवाही करने का प्रस्ताव करने वाले प्राधिकरण और उसका विरोध करने वाले विषय के बीच है तो प्राधिकरण द्वारा किया गया अंतिम निर्धारण तब भी एक अर्ध न्यायिक कार्य होगा बशर्ते प्राधिकरण के लिए संविधि द्वारा न्यायिक कार्य किया जाना अपेक्षित हो।

संक्षेप में निर्णायक प्राधिकरण के अतिरिक्त दो पक्षकारों के मौजूद होने और किसी अन्य घटक के मौजूद न होने पर प्रथम दृष्टया प्राधिकरण को न्यायिक रूप से कार्य करने का कर्त्तव्य प्राप्त होता है, किन्हीं कार्यवाहियों में ऐसे दो पक्षकारों के न होने से प्राधिकरण का कार्य अर्ध न्यायिक श्रेणी से बाहर नहीं जाता, यदि फिर भी प्राधिकरण के लिए संविधि द्वारा न्यायिक कार्यवाही करना अपेक्षित हो।

जैसा कि ऊपर बताया गया है, न्यासी बोर्ड सेवाएं प्रदान कर रहा है और प्रयोक्ता स्वयं सेवाओं का लाभ ले रहे हैं। पहले दरों, शुल्कों, देयताओं को निर्धारित करने के कार्य बोर्ड के पास थे, भले ही सेवाएं उन्हीं के द्वारा प्रदान की जाती थी। अब दरों आदि को निर्धारित करने के कार्य, एक सांविधिक निकाय को प्रदान कर दिए गए हैं।

इस प्रकार दो पक्षकार हैं—एक न्यासी बोर्ड जिन्हें सेवाएं प्रदान करना अपेक्षित होता है और दूसरे प्रयोक्ता जो प्रदान की गई सेवाओं का स्वंय उपयोग करते है। प्रधिकरण को दरों, शुल्कों, देयताओं आदि के मान निर्धारित करने होते हैं जिन्हें बोर्ड, प्रयोक्ताओं को प्रदान की गई सेवाओं के लिए वसूल कर सकता है।

इस तरह निर्णायक प्राधिकरण के अतिरिक्त दो पक्षकार हैं और इसलिए प्राधिकरण को न्यायिक कार्य करना होता है और यह एक अर्ध न्यायिक प्राधिकरण है।

इन तथ्यों के आलोक में ज. ने. प. न्या. के संदर्भ में दिए गए तर्क स्पष्टत: गुणागुण रहित हैं।

(ii) इसलिए महापत्तन प्रशुल्क प्राधिकरण याचिकाओं पर निर्णय नहीं दे सकता।

यह आपत्ति, इस प्राधिकरण के अर्ध न्यायिक स्वरूप से संबंधित आपत्ति की भांति भ्रामक है।

कानून का यह एक स्थापित सिद्धांत है कि अर्ध न्यायिक प्राधिकरणों को पक्षकारों के किसी विवाद को निर्धारित करने से पहले प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का अनुसरण करना चाहिए। प्राकृतिक न्याय का एक सिद्धांत यह है कि पक्षकारों को सुनवाई का अवसर दिया जाएगा जिनमें वे अपने दृष्टिकोण अभिव्यक्त कर सकते हैं ताकि प्राधिकरण मुद्दे का वाद विषय निर्धारित कर सके। न्यायिक निर्धारण का आवश्यक तत्व किसी आदेश से प्रभावित पक्षकार को अभ्यावेदन देने का अवसर देना है। ऐसा होने से इस प्राधिकरण के लिए यह पूरी तरह आवश्यक है कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का अनुपालन करने के लिए पक्षकारों को अभ्यावेदन का अधिकार प्रदान करें।

व्यक्तियों के अधिकारों को निर्धारित करने वाले किसी न्यायिक अथवा अर्ध न्यायिक न्यायाधिकरण/प्राधिकरण को विधि सम्मत प्रशासन बनाए रखने के लिए अवश्य ही प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुरूप होना चाहिए। कारण यह है कि यह सिद्धांत, न्याय का सार सत्व है और इसलिए इसका पालन किसी ऐसे व्यक्ति अथवा निकाय द्वारा अवश्य किया जाना चाहिए जिसे पक्षकारों के अधिकारों का निर्धारण करने का कर्त्तव्य सौंपा गया हो और संयोगवश जिसे न्यायिक रूप से कार्य करने के कर्त्तव्य में शामिल कहा जा सकता हो।

प्राकृतिक न्याय का पहला सिद्धांत यह है कि कोई भी व्यक्ति अपने मामले का स्वयं निर्णायक नहीं हो सकता। हमें मालूम होता है कि विधायिका के मस्तिष्क में प्राकृतिक न्याय का यही सिद्धांत था जब उसने न्यासी बोर्ड से प्रशुल्क लगाने आदि की शक्तियां वापस लीं और उन्हें अन्य निकाय अर्थात् इस प्राधिकरण को प्रदान किया।

प्राकृतिक न्याय का दूसरा सिद्धांत यह है कि "दूसरे पक्ष को भी सुनो"। वास्तव में इस सिद्धांत का प्रयोग केवल विधिक न्यायाधिकरणों/प्राधिकरणों के कार्य क्षेत्र तक ही सीमित नहीं है। यह सिद्धांत ऐसे प्रत्येक न्यायाधिकरण या व्यक्तियों के निकाय पर लागू होता है जिनमें अलग-अलग व्यक्तियों पर सिविल परिणामों वाले मामले में निर्णय देने का प्राधिकार निहित होता है। किसी नागरिक पर प्रतिकूल प्रभाव डालने की शक्ति से सम्पन्न कोई न्यायाधिकरण/ प्राधिकरण, चाहे वह न्यायिक हो या प्रशासनिक, कार्रवाई शुरू करने से पहले उस नागरिक को सुने जाने का अवसर देने के लिए बाध्य होता है।

यह तर्क दिया गया है कि सुनवाई का अधिकार संविधि द्वारा प्रदान नहीं किया गया है। कानून की तयशुदा स्थिति यह है कि उन सभी पक्षकारों को सुनवाई के लिए बुलाना होता है जिन्हें सिविल परिणामों को भुगतने की संभावना होती है, जब तक कि विधायिका द्वारा स्पष्ट रूप से या विवक्षित रूप से ऐसी सुनवाई किए बिना कार्यवाही करने का प्राधिकार न दिया गया हो। इस कारण से इस प्रधिकरण के दोनों पक्षकारों की सुनवाई करने के सिवाय अथवा अन्य पक्षकार द्वारा उठाए गए विवाद पर उन्हें अभ्यावेदन करने के लिए अवसर देने के सिवाय और कोई चारा नहीं है। यदि बुनियादी अपेक्षाओं का विरोध होता है तो प्राधिकरण का कोई भी निर्णय, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का अनुपालन न होने के कारण आरम्भ से ही व्यर्थ हो सकता है।

ज. ने. प. न्या. ने यह तर्क दिया है कि निर्णय देने की शक्ति या तो विनिर्दिष्ट रूप से सन्निहित होगी या फिर चीजों की बुनियादी स्कीमों से असंगत नहीं होगी। वर्तमान रूप में उनका तर्क है कि महापत्तन प्रशुल्क प्राधिकरण से संबंधित उपबंधों में निर्णय देने की व्यवस्था नहीं है। इस परिप्रेक्ष्य में उन परिस्थितियों को स्मरण करना संगत होगा जिनके कारण इस तटस्थ, सांविधिक स्वायत्त प्राधिकरण का गठन हुआ।

ग्यारह महापत्तन देश के 80% आयात/निर्यात यातायात हैंडल करते हैं। विकास के हमारे वर्तमान चरण में यह महसूस किया गया कि अर्थव्यवस्था से महापत्तनों में यातायात में किसी प्रकार की अस्थिरता न होने पाए। चूँकि पत्तनों का निजीकरण किए जाने के अभियान की प्रत्येक घटनाओं का अनुमान लगाना संभव नहीं था, इसलिए एक सतर्क दृष्टिकोण अपनाया गया। अत: जब तक निजीकरण की गति में तेजी नहीं आती और प्रतियोगी खुली बाजार स्थितियाँ स्थिर नहीं हो जाती, खुले बाजार की शक्तियों के मुक्त प्रचालन की सिफारिश नहीं की गई। तदनुसार प्रशुल्कों के विनियमन के लिए एक तटस्थ नियामक निकाय गठित करने का प्रस्ताव किया गया। संभवत: इस व्यवस्था में पत्तनों में निजी एकाधिकार से रक्षा करने की चिंता की एक अंतर्धारा भी निहित थी। स्वयं निजी प्रचालकों (भावी) ने भी पत्तन न्यासों अथवा सरकार के बजाय सांविधिक स्वायत्त निकाय द्वारा लगाए गए प्रशुल्कों के विनियमन को तरजीह दी।

इस पृष्ठभूमि में प्राधिकरण का मुख्य प्रयोजन स्पष्ट रूप से पत्तन न्यासों/ निजी प्रचालकों और (उनके) प्रयोक्ताओं के बीच माध्यस्थम का कार्य करना है। मूल प्रयोजन यह है कि सार्वजनिक अथवा निजी एकाधिकार की बुराइयों से रक्षा हो और प्रशुल्क ढांचा युक्तिसंगत हो तथा प्रशुल्क नियतन प्रणाली सुधारू हो। यदि ऐसा होता है तो परामर्शों से संबंधित युक्तिसंगत ढांचागत प्रणाली कैसे चीजों की बुनियादी स्कीम से प्रतिकूल हो सकती है।

(iii) महापत्तन प्रशुल्क प्राधिकरण, सुनवाई करने के लिए प्राधिकृत नहीं है। यह साक्षियों का नहीं बुला सकता। यह साक्ष्य का रिकार्ड नहीं कर सकता है।

ऊपर दिए गए विश्लेषण के आलोक में यह बात भरपूर स्पष्ट है कि यह प्राधिकरण अपने स्वरूप में अर्ध न्यायिक होने के कारण सुनवाई कर सकता है (और अवश्य करनी चाहिए) तथा प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का अनुसरण कर सकता है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि स्थापित निर्णयजन्य विधि के अनुसार कोई प्रशासनिक आदेश ही प्राकृतिक न्याय के नियमों के अनुरूप ही होना चाहिए, यदि ऐसे आदेश में सिविल परिणामों की बात हो अथवा ऐसे आदेश से किसी नागरिक का कोई अधिकार प्रभावित होता हो जिसे किसी कानूनी कार्रवाई द्वारा लागू किया जा सकता हो जिसमें कि प्रक्रियात्मक अधिकार भी शामिल हो। अतः इस आपत्ति में कोई दम नहीं है।

जहाँ तक व्यक्तियों आदि को बुलाने के लिए शक्ति प्रदायक निर्दिष्ट उपबंधों के अभाव से संबंधित टिप्पणी का संबंध है, यह स्वीकार करना होगा कि स्थिति वास्तव में यही तथ्यपरक है। ये ही सांविधिक उपबंधों में अन्तर हैं। इन्हीं से प्राधिकरण के काम में बाधा उत्पन्न होती है। इसका यह अभिप्राय नहीं है कि वे प्राधिकरण की भूमिका और कार्यों को रोक देते हैं। आज स्थिति यह है कि प्राधिकरण व्यक्तियों को उपस्थित होने और अभिसाक्ष्य देने के लिए बाध्य नहीं कर सकता है; किन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं है कि प्राधिकरण कार्रवाई नहीं कर सकता है। यह व्यक्तियों को लिखित में अथवा व्यक्तिगत रूप से साक्ष्य देने के लिए आमंत्रित कर सकता है और उनका साक्ष्य भी रिकार्ड कर सकता है जिनसे प्रत्युत्तर होता है। यहाँ इस बात पर भी ध्यान देना संगत है कि हमेशा मौखिक साक्ष्य ही आवश्यक नहीं होता बल्कि पक्षकार दस्तावेजी साक्ष्य अथवा साक्ष्य का शपथ पत्र प्रस्तुत कर सकते हैं ताकि प्राधिकरण के समक्ष सही निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए पर्याप्त सामग्री हो।

वस्तुतः इस आपत्ति में कोई दम नहीं है और इसे रद्द किया जाता है।

5. फलतः उपर्युक्त कारणोंवश पूर्वोक्त सभी तीनों आपत्तियाँ अर्थहीन हैं और उचित रूप से अवधारित नहीं हैं। इन्हें तदनुसार निरस्त किया जाता है। परिणामस्वरूप अब मामले पर योग्यतानुसार विचार किया जाएगा।

एस. सत्यम, अध्यक्ष

18 जून, 1998

TARIFF AUTHORITY FOR MAJOR PORTS

NOTIFICATION

New Delhi, the 1st July, 1998

No. TAMP/1/97-JNPT.—In exercise of the powers conferred by Sections 49 and 50 of the Major Port Trusts Act, 1963 (38 of 1963), the Tariff Authority for Major Ports hereby issues an order on the preliminary objections raised by the Jawaharlal Nehru Port Trust (JNPT) in the case relating to the representation made by the Bombay Custom House Agents Association about operation of a new Buffer Yard at the JNPT.

[ADVT/III/IV/143/98 Exty]

S. SATHYAM, Chairman

TARIFF AUTHORITY FOR MAJOR PORTS

Case No. TAMPT/1/97-JNPT

The Bombay Custom House Agents Association ... **Applicant**

Vs

Jawaharlal Nehru Port Trust ... **Non-Applicant**

ORDER

(Passed on this 18th day of June 1998)

This case relates to a representation received from the Bombay Custom House Agents' Association (BCHAA) alleging that the Jawaharlal Nehru Port Trust (JNPT) had passed an order introducing a new Buffer Yard and levying new tariffs without the approval of or (even) in consultation with the Authority.

2. After protracted correspondence on the subject, the JNPT finally submitted a proposal on 7 March 98 for framing the scale of rates and the statement of conditions governing operation of the Buffer Yard. This case was taken up for a hearing in Delhi on 8 May 98.

3.1 At the hearing, before going into the merits of the case, the JNPT raised some preliminary objections about the Authority's jurisdiction to go into this matter and in the manner in which the case was being progressed. The preliminary objections raised in the verbal submissions at the hearing were in the main as follows:

(i) The Tariff Authority for Major Ports (TAMP) is not a quasi-judicial Authority.

(ii) It cannot, therefore, adjudicate on petitions.

(iii) The TAMP is not authorised to hold hearings. It cannot summon witnesses. It cannot record evidence.

3.2 Shri Rajiv Kumar, the Senior Counsel who appeared for the JNPT, requested for some time to be given to the JNPT to make proper written submissions in the matter. The BCHAA was also in favour of such time being given so that they could properly reply to the written submissions of the JNPT.

3.3 Accordingly, the JNPT was given time till 25 May 98 to file written submissions; and, the BCHAA was required to give their replies to the written submission before the next hearing.

3.4 No written submissions have been received from the JNPT in this case.

That being so, the question of replies from the BCHAA does not arise.

4. In the circumstance, we proceed to deal with the three preliminary objections seriatim as follows:

(i) The TAMP is not a quasi-judicial Authority.

This is not the correct position of law.

There is no dispute that the Authority has been created under the statute and as such it is a statutory Authority. Its main functions are to frame scales of rates, fees, port dues as also rates for the properties of the Port Trust. In cases relating to tariff proposals invariably, there are two parties, one the Board of Trustees, and the other a user or a body of users.

Earlier, it was the Board of Trustees who were empowered to frame scales of rates, fees, and port dues, etc., for the services to be rendered by them. In other words, they used to render the services and prescribe their own fees, rates and dues. After the amendment of the Major Port Trusts Act, the services are to be rendered by the Board of Trustees but the scale of rates, fees, port dues, etc., are to be determined by an independent body created under the stature.

The settled position of law is that if a statute empowers an Authority, not being a court in the ordinary sense, to decide disputes arising out of a claim by one party under the statute which is opposed by another party and to determine the respective rights of the contesting parties who are opposed to each other, there is a lis prima facie and, in the absence of anything in the statute to the contrary, it is the duty of the Authority to act judicially and the decision of the Authority is a quasi-judicial act.

Similarlly, if a statutory Authority has the power to do any act which will prejudicially affect the subject, then, although there are not two parties apart from the Authority and the contest is between the Authority proposing to do the act the subject opposing it, the final determination by the Authority will yet be a quasi-judicial act provided the Authority is required by the statute to act judicially.

In short, while the presence of two parties besides the deciding Authority will prima facie, and in the absence of any other factor, impose upon the Authority the duty to act judicially, the absence of two such parties in any proceedings will not by itself take the act of the Authority out of the quasi-judicial category if the Authority is nevertheless required by the statute to act judicially.

As stated hereinabove, the Board of Trustees is rendering the services and the users are availing themselves of the services.

Earlier, the functions of prescribing rates, fees and dues, were with the Board even though services were also rendered by them. Now the functions of prescribing, rates, etc., have been conferred on a statutory Authority.

Thus, there are two parties—one the Board of Trustees who are required to provide services, and the other 'users' who avail themselves of the services provided. The Authority has to determine the scale of rates, fees, dues, etc., which the Board can recover for the services rendered by them to the users.

Thus, there are two parties besides the deciding Authority and, therefore, the Authority has to act judicially and it is a quasi-judicial Authority.

Seen in this light, the contentions in reference of the JNPT are clearly shown to be devoid of any merit.

(ii) The TAMP cannot, therefore, adjudicate on petitions

This objection is as fallacious as the one about the quasi-judicial character of this Authority.

It is an established principle of law that quasi-judicial Authorities must follow the principles of natural justice before determining any dispute between parties. One of the principles of natural justice is that the parties shall be given an opportunity for a hearing wherein they can express their points of view to enable the Authority to determine the point at issue. The essential element of judicial determination is to give an opportunity to make a representation to the party which is affected by an order. That being so, it will be absolutely essential for this Authority to afford a right of representation to the parties in order to comply with the principles of natural justice.

Any judicial or quasi-judicial Tribunal/Authority determining the rights of individuals must conform to the principles of natural justice in order to maintain the rule of law. The reason is that this principle constitutes the essence of justice and must, therefore, be observed by any person or body charged with a duty of deciding the rights of the parties which, incidentally, can be said to involve the duty of acting judicially.

The first principle of natural justice is "*Nemo debe esse judex in propria causa*". It means that no one shall be a judge in his own cause. It seems to us, it is this principle of natural justice that weighed on the mind of the legislature when it took away from the Board of Trustees the power to levy tariffs, etc., and conferred it on the other statutory body, vi., this Authority.

The other principle of natural justice is "*Audi alteram partem*". It means that no one shall be condemned unheard. In fact, this principle is not confined in its application only to the conduct of strictly legal Tribunals/Authorities. It is clearly applicable to every Tribual or body of persons vested with the authority to adjudicate upon matters involving civil consequences to individuals. Any Tribunal/Authority, judicial or administrative, which is vested with the power to affect the rights of a citizen, is bound to given him an opportunity of being heard before it proceeds with action. This dictum leads to the result that no man is to be deprived of his rights without having an opportunity of being heard. In the present case, the very nature of functions, powers, and duties of this Authority necessitates hearing of the parties before any decision is taken affecting their rights.

It is contended that right of hearing has not been conferred by the Statute. The settled position of law is that a hearing has to be offered to all the parties who are likely to meet with civil consequences unless the legislature has expressly or impliedly given the authority to act without affording such hearing. In this case, there is no such specific authorisation given. That being so, this Authority can not but afford a hearing to the parties or give them an opportunity to make a representation against the contention raised by the other party. If this basic requirement is contravened, any decision of the Authority may be held to be void ab initio because of non-compliance with the principles of natural justice. It has been argued by the JNPT that the power to adjudicate shall be either specifically vested or shall not be incompatible with the basic scheme of things. It is their contention that, in their present form, the provisions relating to the TAMP do not admit of adjudication. In this context, it will be relevant to recall the circumstances leading to the constitution of this neutral, statutorily autonomous Authority.

The eleven major ports handle over 80% of the country's import/export traffic. In our present stage of development, it was felt, the economy should not be exposed to any destabilisation of traffic in the major ports. Since it was not possible to anticipate all the eventualities of the move to privatise ports, a cautious approcach was envisioned. Free operation of open market forces was, therefore, not recommended until the pace of privatisation picked up and competitive open market conditions stabilised. Accordingly, a neutral Regulatory Body was proposed to be set up for regulating tariffs. Inherent in this arrangement was, perhaps, also an undercurrent of anxiety to guard against private monopolies in ports. The (prospective) private operators themselves also seemed to prefer regulation of tariffs by a statutorily autonomous body rather than by the Port Trusts or the Government.

In this backdrop, the raison d'etre of the Authority clearly emerges as an arbiter between port trusts/private operators and (their) users. The basic purpose is to guard against the ills of public or private monopolies and to rationalise the tariff structure and streamline the tariff-setting system. If this is to be so, then, how can a reasonably structured system of consultations be held to be militating against the basic scheme of things!

(iii) The TAMP is not authorised to hold hearings. It cannot summon witnesses. It cannot record evidence.

In the light of the analysis given above, it is abundantly clear that this Authority, being quasi-judicial in nature, can (and must) hold hearings and follow the principles of natural justice. It is noteworthy that, according to established case law, even an administrative order must be made in conformity with the rules of natural justice if it involves civil consequences or if

it affects any right of a citizen which is capable of being enforced by a legal action which will include even procedural rights. That being so, there can be no force in this objection.

As regards the observation about absence of specific provisions enabling summoning of persons, etc., it has to be admitted that the position is indeed factually so. These are gaps in the statutory provisions. They do hamper the Authority's working. That does not mean, they restrict the role and fuctions of the Authority. The position today is that the Authority cannot compel persons to appear and depose; but, this does not mean that the Authority cannot act. It can invite persons to tender evidence either in writing or in person and record the evidence of those who do respond. It is also relevant to note here that it is not always the oral evidence that is necessary but, parties can furnish documentary evidence or affidavit of evidence so that the Authority has before it sufficient material to come to correct findings.

In effect, this objection holds no force and deserves to be dismissed.

5. In the result, and for the reasons given above, all the three objections discussed above have to be seen to be vacuous and ill conceived. They are dismissed accordingly. Consequently, the case will now proceed for consideration on merits.

S. SATHYAM, Chairman

18 June 98.

Printed by the Manager, Govt. of India Press, Ring Road, Mayapuri, New Delhi-110064
and Published by the Controller of Publications, Delhi-110054 — 1998